वेदकालीन उन्नत समाज

देवर्षि कलानाथ शास्त्री

(राष्ट्रपति सम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

भारतवर्ष की अमूल्य संपत्ति के रूप में जिन वेदों का महत्त्व विश्व में निरपवाद रूप से स्वीकारा जाता है, उनके विषय में सबसे आश्चर्यजनक तथ्य यह है, कि विगत एक हजार वर्षों में उनका मूल संदेश, तथ्य और सिद्धान्त समय की परिवर्तनशील धारा से बहते हुए इतने अधिक धूमिल और अपरिज्ञात हो गये, कि इस देश के सामूहिक अवचेतन में वेदों की मूलभूत प्रतिष्ठा का बोध उनका नाममात्र लेकर तो कराया जाता रहा, और बिना अर्थ जाने रहने की परम्परा में परिगृहीत होने के कारण उनके कुछ मंत्रों की याददाश्त भी विद्वानों की जिह्वा पर रही, पर उनके अर्थ का अनुशीलन, परिज्ञान, उनकी तात्त्विक व्याख्या और जानकारी अज्ञात की गुहा में छिप कर प्रायः समाप्त ही हो गई जिसका परिणाम यह हुआ, कि लगभग एक शताब्दी पूर्व कुछ भारतीय और कुछ विदेशी विद्वानों ने उनके मूलभूत आधारों की पुनः प्रतिष्ठा करने हेतु जब उनके परिशीलन का पुनरुद्धार किया, तो इस देश की जनता को ऐसा लगा मानों वे एक बहुत पुरानी लुप्त सभ्यता की आश्चर्यजनक और आकस्मिक खोज का चमत्कार देख रहे हों।

इसका कारण यही है, कि आज से हजारों वर्ष पूर्व वैदिक सभ्यता की जो मूलभूत परंपराएं थीं, वे उपनिषदों, पुराणों, काव्यों और सन्तवाणियों की परवर्ती और विविध विचारधाराओं के समन्वय की सतत प्रक्रिया से गुजरते गुजरते इतनी बदल गई कि वेद के भाषा, वेद की मान्यताएं, वेद की देवता, वेद के रीति-रिवाज़ आदि आज देखने को भी नहीं मिलते और जिन्हें है, यह बात समझने वाले भी बिरले होते गये।

आधुनिक काल में शोध के नाम पर जब वैदिक भाषा, संस्कृति और साहित्य पर विद्वान मेहनत करने लगे तो मालूम पड़ने लगा कि वेद के देवता जिनमें इन्द्र, वरुण, प्रजापति, द्यौ आदि प्रमुख थे, आज सामान्य भारतीय के

लिए नितांत अज्ञात हैं और गौरी, गणेश, हनुमान, राम और कृष्ण जैसे देवता जिनका नामोनिशान तक वेदों में नहीं था वेदों के प्रतिपाद्य ईश्वर के रूप में जनमानस में सिंहासनासीन हैं। हर मंदिर में जो पूजा होती है, उसका वेद में कहीं अता-पता नहीं है, कि वेदकाल के वाजपेय और अश्वमेध जैसे यज्ञ आज देखने और सुनने को भी नहीं मिल सकते।

तात्पर्य यह है कि भारतीय संस्कृति के मूलाधार वेद आज रिसर्च या खोज के विषय रह गये हैं और इसीलिए यह विवरण जिज्ञासुओं के लिए निश्चित रूप से बहुमूल्य होगा कि उस ऋग्वेद के समय जो भारतीय सभ्यता की सबसे पहली पुस्तक और अतिप्राचीन ज्ञानराशि है - भारतीय समाज कैसा था और क्या परंपराएँ उस समय प्रचलित थीं ।

वैदिक सभ्यता कितनी पुरानी है इस बारे में विद्वानों में मतभेद है- कुछ लोग इसे ईसा से ३,००,००० वर्ष पूर्व तक ले जाते हैं तो कुछ इसे ईसा से ६०० वर्ष पूर्व की बतलाते हैं। सभी वरिष्ठ विद्वान ऋग्वेद सभ्यता को ईसा से कम से कम दो हजार वर्ष पूर्व की मानते हैं। यजुर्वेद, अथर्ववेद आदि अन्य वेद इसके बहुत बाद की रचनाएं हैं इसलिए शोध विद्वान् ऋग्वेद को ही प्राचीन और प्रामाणिक मानते हैं।

यदि ऋग्वेदकालीन भारतीय समाज का एक मोटा खाका खींचा जाय, तो स्पष्ट होगा कि उस समय हमारा समाज ग्राम-प्रधान, कृषि-प्रधान तथा एक समृद्ध, वैचारिक रूप से विकसित और सुशासित जनसमूह था । अथर्ववेद के काल तक आते-आते बड़े नगरों का अस्तित्व भी मिलता है। एक आश्चर्य की बात यह है, कि अधिकांश सभ्यताओं में प्रारंभ में आदिमानव-समाज अंधविश्वासी, रूढ़िवादी तथा दकियानूस होता है और ज्ञान के विकास के साथ-साथ उसका दृष्टिकोण प्रगतिशील होता जाता है। किन्तु वेदकाल और पुराणकाल की तुलना करने पर यह मालूम होता है कि भारत में ऋग्वेद के समय जो समाज पर्याप्त रूप से प्रगतिशील, रूढ़िवादी और दकियानूस होता चला गया। इसके दो तीन उदाहरण ही पर्याप्त होंगे-

ऋग्वेद काल में नारियों को समाज में वही प्रतिष्ठा दी जाती थी, जो पुरुषों की थी। नारियाँ उच्चशिक्षा प्राप्त कर सकती थीं। ऋग्वेद की ऋचाओं का दर्शन करके ऋषिपद प्राप्त करने वाली घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, रोमशा, सूर्या आदि अनेक विदुषियों का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का यह स्थान उपनिषत् काल के बाद की कट्टरता के कारण बदलता गया और मध्यकाल तक आते-आते यह कहा जाने लगा, कि स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार

ही नहीं है। ऋग्वेद में जहाँ पर्दाप्रथा का नाम तक नहीं है, वहाँ मध्यकाल तक आते-आते नारी सुयोग्या और संपत्ति की तरह छिपाने के लायक बना दी गई।

इसी प्रकार ऋग्वेद में जिस बाल विवाह का कहीं उल्लेख नहीं है, वह स्मृतिकाल तक आते-आते एक आम बात हो गयी और 'अष्टवर्षा भवेत् गौरी' कहकर आठ वर्ष की कन्या के विवाह को पुण्य कार्य और बड़ी होने तक कन्या का विवाह न कर पाने को बड़ा पाप माना जाने लगा।

सोमो वधुयुरभवदश्विना ता उभा वरा। सूर्या यत् पत्ये शंसंती
मनसा सविताऽददात्। (ऋ. १०/८५/९)

इस ऋचा से स्पष्ट है कि ऋग्वेद काल में प्राप्तयौवना युवती ही विवाह करती थी। ऋग्वेद में सामिष और निरामिष सभी प्रकार के आहार जो स्वादिष्ट और पोषक हों सभी के द्वारा ग्राह्य थे, किंतु बाद में आकर आमिष भोजन पाप माना जाने लगा और मध्यकाल में तो वनस्पतिजगत् की भी अनेक वस्तुएँ धार्मिक आधारों पर अभोज्य मानी जाने लगीं।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है, कि ऋग्वेद कालीन समाज जीवन के उपभोग के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण रखने वाला समृद्ध और प्रबुद्ध समाज था। ऋग्वेद में आवासीय भवनों का जो वर्णन मिलता है, उससे लगता है कि आर्य लोग जीवन की समस्त सुखसुविधाओं के दृष्टिकोण से गृहनिर्माण करते थे। **इन्द्र विधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्। छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावता दिद्युमेभ्यः।** इस ऋचा में तीन चौक वाले समस्त सुविधासंपन्न घर का वर्णन किया गया है (६/४६/९)। प्रत्येक घर में एक अग्निशाला, एक भंडार, एक अन्तर्गृह और एक सदस् या बाहरी कमरा अवश्य होता था। इसके साथ गोत्र या शाला अर्थात् पशुपालन के लिये बाड़े भी अनिवार्य थे। बड़े भवनों में आवसथ याने अतिथिशालाएं भी हुआ करती थीं। ईंट, पत्थर, मिट्टी, घासफूस तथा छावन सभी का गृहनिर्माण में उपयोग किया जाता था।

ऋग्वेद में घर घर में भांति-भांति के आसनों, कुर्सियों, शैय्याओं और पालकियों आदि का वर्णन मिलता है। समृद्ध कुलवधुओं की आरामदायक शय्याओं का वर्णन एक ऋचा में मिलता है- **प्रोष्ठेशया वह्येशया**

नारीर्यास्तल्पशीवरीः स्त्रियो या पुण्यगूधास्ताः सर्वाः स्वापयामसि (७/५५/८)। प्रोष्ठ, वह्य और तल्प उस समय की शैयाएं थी। प्रोष्ठ ऊंचा और काठ का बना बेंच होता था जिसके सुनिर्मित दो पैर होते थे। वह्य पालकी या डोली के आकार का विस्तृत शयन होता था, जिस पर नव वधु ले जायी जाती थी ओर दम्पति उसी पर सोते थे। तल्प बृहदाकार पलंग होता था जो रसिकजनों का प्रिय हुआ करता था। परवर्ती काल के अथर्ववेद में आसंदी आदि अन्य अनेक तरह की कुर्सियों का भी वर्णन है। तरह तरह के सुती तथा रेशमी वस्त्र उस समय बुने जाते थे। थोड़ा वस्त्र निर्माण का कार्य घरों पर ही हो जाता था यह इस उल्लेख से प्रतीत होता है, जिसमें कहा गया है कि माता पुत्र के लिए वस्त्र बुना करती है-

वितन्वते धियो अस्त्रा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति। (५/४७/६) धनी व्यक्ति जरी के काम किये हुए चोले पहनेते थे, जिन्हें द्रापि कहा जाता था। पेशस् नाम का जरी से चमकता सुनहला वस्त्र ऋग्वेद काल का बहुमूल्य परिधान था। वैसे उस समय गृहकार्य में काम आने वाले पशु ही सबसे बड़ा धन माने जाते थे और तुलनात्मक वर्गीकरण के लिये धनी गृहस्थों को शतगुः (सौ गायों वाला) और सहस्रगुः (हजार गायों वाला) कह कर उनकी कोटियाँ भी बतलायी जाती थीं, क्योंकि गाय उस मसय धन की एक इकाई मानी जाती थी, किन्तु इसके अतिरिक्त सोना चाँदी आदि का भी चलन था, यह अनेक वर्णनो से प्रतीत होता है। हिरण्यस्येव कलशं निखातम् कह कर (१/११७/१२) ऋग्वेद में यह संकेत किया गया है, कि उस समय कलश में रख कर सोने को भूमि में गाड़ देना भी धन संग्रह का एक प्रकार था।

गहनों से शृङ्गार करने की प्रथा केवल स्त्रियों में ही नहीं, पुरुषों में भी थी। निष्क अर्थात् सोने का हार पुरुष भी पहनते थे- जिनमें मणि भी जड़े जाते थे। **हिरण्येन मणिना शुंभमानाः** (१/३३/८) कहकर वृत्रासुर के अनुयायियों का वर्णन किया गया है। कान के गहने वर्णशोभन तथा वक्षः स्थल पर पहने जाने वाले गहने रूक्म कहे जाते थे। स्त्रियाँ तो तरह-तरह के जूड़े का कपर्द बनाती ही थीं, पुरुष भी कपर्द धारण करते थे। रुद्र और पूषा दोनों को कपर्दी कहा गया है। ओपशा, कुरीर और कुम्ब उस समय स्त्रियों की हेयर स्टाइल्स हुआ करती थी।

पुरुष दाढ़ी भी रखते थे और क्षौर भी करवाते थे। श्मश्रु दाढ़ी और मूँछ दोनों को कहते थे और इसे पुरुषत्व का प्रतीक माना जाता था।

ऋग्वेद में कृषि तौर पशुपालन सबसे बड़े आर्थिक कार्य बतलाये गये हैं। वैसे प्रत्येक ग्राम में बुनकर, बढ़ई, कुम्हार, क्षौरकार, वैद्य, लुहार आदि सहायक पेशे भी थे, ऐसा वर्णन उपलब्ध होता है। प्रत्येक आर्य स्वयं संगीतज्ञ, खगोल का ज्ञाता और कृषक तथा पशुपालक होता था। प्रत्येक ऋतु में विशेषकर फसल काटने के अवसरों पर यज्ञों और महोत्सवों के वर्णन तथा मनोविनोदों के उल्लेख मिलते हैं। सोमरस एक पौष्टिक तथा आह्लादक पेय होता था जिसका सामूहिक पान विशेषकर देवताओं एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों की उपस्थिति में पीना-पिलाना उत्सव का प्रमुख कार्य होता था।

सोमरस वनस्पति का रस होता था और उच्चकोटि का पेय माना जाता था, जबकि सुरा मादक द्रव्य तथा मद्य होने के कारण नीचे के तबके के लोगों का पेय तथा गर्हित माना जाता था। **न स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा। सुरा मन्युर्विभीदकी अचित्तिः** (७/८६/६) कह कर ऋग्वेद कलह करना, जुआ खेलना, मूर्खतापूर्ण कार्य करना तथा सुरा पीना- इन चारों कृत्यों को घृणा की दृष्टि से देखता है।

स्वादिष्ट भोजन जिनमें सामिष और निरामिष दोनों तरह के विविध भोजन हो सकते थे, संगीत नृत्य, विज्ञान चर्चा और आमोद प्रमोद के संलाप यज्ञों और उत्सवों के अनिवार्य क्रियाकलाप होते थे।

भोजन की वस्तुओं में दूध, दही और घी से बने पदार्थ प्रमुख होते थे। खीर, सत्तू, आदि अनेक मिष्ठान्नों का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। गोधूम या गेहूँ का उल्लेख ऋग्वेद में नहीं हुआ है- परवर्ती साहित्य में इसका उल्लेख मिलता है। अन्न का महत्त्व ऋग्वेद में विस्तार से वर्णित है। तत्कालीन सभ्यता के कृषिप्रधान होने के कारण धान्य और पशुधन ऋग्वेद की सबसे बड़ी संपत्ति मानी जाती थी। इन संकेतों से यह स्पष्ट हो जाएगा, कि ऋग्वेद की संस्कृति एक प्रबुद्ध और विकसित मानव समाज का प्रतिनिधित्व करती है और हजारों वर्ष पुरानी होने पर भी उसमें आदि मानव की सी अपरिपक्वता नहीं पायी जाती।